॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

श्रीहरिदास निवास पत्रिका

द्वैमासिक

वर्ष १ **अङ्क** ३

वार्षिक सदस्यता शुल्क: रूपया १००/= मात्र (साधारण डाक व्यय सहित)

प्रकाशन तिथि :— अग्रहायण शुक्ल एकादशी, गीता जयन्ती, संवत् २०६७, १७ दिसम्बर २०१०

श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन- २८११२१, मथुरा, उ०प्र०

सम्पादक : श्री हरिदास शास्त्री

संस्थापक एवं अध्यक्ष :

श्रीहरिदास शास्त्री गो सेवा संस्थान

श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन।

सम्पर्क सूत्र :—

0565 3202322, 0565 3202325 **(सम्पादक,** श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन **)**

09690751111, 09358703224 श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन

09313103109 नोएडा

09350261671, 09350110116, 09810098122, 09810876667 दिल्ली

Website: www.sriharidasniwas.org

E-mail: patrika@sriharidasniwas.org

info@sriharidasniwas.org

मुद्रक: श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्॥

सम्पादकीय

उत्तमाभक्ति का एक प्रमुख अङ्ग है– श्रीहरिनाम का जप, कीर्त्तन आदि। किस प्रकार से श्रीहरिनाम किया जाय कि भगवान में प्रीति उत्पन्न हो? इसका बड़ा सुन्दर उत्तर श्रीचैतन्य चरितामृत (३-२०-१६ से २३) में दिया गया है। भक्त को अपनी भक्ति के संरक्षण-संवर्द्धन वा भगवत्प्रीति (एकता और अनुकूलता) प्राप्ति हेतु इस विवरण के अनुसार भक्ति करनी चाहिए। श्रीहरिनाम से भक्ति के अन्य समस्त अङ्गों (गुरु, गोविन्द, गो आदि की सेवा) का भी ग्रहण करना होगा। श्रीचैतन्य चरितामृत का श्रीहरिनाम ग्रहण विधि प्रसङ्ग (श्रीचैतन्यमहाप्रभु और श्रीरायरामानन्द के बीच हुआ संवाद) निम्न प्रकार से है–

"ये रूपे लइले नाम प्रेम उपजय। तार लक्षण शुन स्वरूप रामराय॥

तृणादपि सुनीचेन तरुरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

उत्तम हैञा आपनाके माने तृणाधम। दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम॥
वृक्ष येन काटिलेओ किछु ना बोलय। शुकाइया भैले कारेओ पानी ना माँगय॥
येइ ये मागये, तारे देय आपन धन। घर्म्म वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण॥
उत्तम हैञा वैष्णव हवे निरभिमान। जीवे सम्मान दिवे जानि कृष्ण अधिष्ठान॥
एइमत हैञा येइ कृष्णनाम लय। श्रीकृष्णचरणे तार प्रेम उपजय॥
कहिते कहिते प्रभुर दैन्य बाढ़िला। शुद्धभक्ति कृष्णठाँञि मागिते लागिला॥
प्रेमेर स्वभाव, याँहा प्रेमेर सम्बन्ध। सेइ माने, कृष्णे मोर नाहि भक्तिगन्ध॥"

वैष्णव को हर प्रकार से उत्तम (योग्य) बनना पड़ता है क्योंकि तभी सेवा सम्भव होता है। किन्तु उत्तम होकर भी वह अभिमान शून्य (तृण के समान विनम्र)होता है। वह वृक्ष की भाँति हर प्रकार का कष्ट उठाकर दूसरे प्राणियों की रक्षा करता है; तथा प्राणियों को कृष्ण का अधिष्ठान जानकर उन्हें सम्मान देता है। इस प्रकार होकर जब श्रीगुरु के आनुगत्य में श्रीहरिनाम कीर्त्तन आदि भक्ति के अङ्गों का पालन किया जाता है तब जाकर भगवान के चरणों में पञ्चम पुरुषार्थ प्रीति उत्पन्न होता है।

सूचना :— १—पत्रिका के समस्त सदस्यों को सूचित किया जाता है कि वे भविष्य में अपनी सदस्यता के नवीनीकरण, पत्रिका के पुनर्प्रेषण, पता परिवर्तन आदि के लिए अपना नवीनतम कोड संख्या अवश्य बताएं। कोड संख्या पत्रिका के लिफाफे पर सदस्य के पता के प्रारम्भ में अंकों में छपा हुआ मिलेगा। यह कोड प्रायः अपरिवर्तनीय होगा किन्तु विशेष परिस्थितियों में परिवर्तित कर नया कोड भी जारी किया जा सकता है। पुनः नया कोड संख्या आपको डाक द्वारा प्रेषित पत्रिका के लिफाफे पर छपा हुआ मिलेगा।

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्॥

उत्तमाभक्ति का वैशिष्ट्य — भाग- १

श्रीहरिदास शास्त्री (न्यायाचार्य्य)

लोक में देखा जाता है कि कोई भी प्राणी किसी कार्य में तभी प्रवृत्त होता है जब उसे उस कार्य में अपने किसी प्रयोजन विशेष की सिद्धि दिखाई देती है। यह प्राणियों का स्वभावगत धर्म होता है। इसीलिए लोगों को किसी भी कार्य में प्रवृत्त कराने के लिए सर्वप्रथम कार्य के वर्णन के साथ साथ उस कार्य करने के प्रतिफल में मिलने वाले पुरस्कार (इस पुरस्कार को हम वैशिष्ट्य, माहात्म्य आदि शब्दों से भी व्यक्त कर सकते हैं) का विशेष रूप से वर्णन किया जाता है। यह प्रवृत्ति लौकिक एवं पारलौकिक दोनों क्षेत्रों में पायी जाती है। शास्त्रों में सर्वत्र हर उपदेश के साथ में उसके माहात्म्य, प्रतिफल आदि का वर्णन देखा जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य होता है कि लोग उस उपदेश पालन में प्रवृत्त हों। सर्वलोकमङ्गल विधायिनी उत्तमा भक्ति में लोक की प्रवृत्ति हो, इसके लिए उसके वैशिष्ट्य का बोध होना अति आवश्यक है। अतएव श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धुकार ने उत्तमा भक्ति के लक्षण का वर्णन करने के पश्चात् उसके वैशिष्ट्य (उत्कर्ष) का वर्णन किया है। यहाँ अब उसी का वर्णन करेंगे।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (१-१-१७)में कहा गया है—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्ल्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥

अर्थात् उत्तमा भक्ति समस्त क्लेशों को नाश करने वाली है, समस्त प्रकार के शुभों को प्रदान करने वाली है। यह मोक्ष को भी तुच्छ बोध कराने वाली है तथा सुदुर्ल्लभ है। यह सान्द्रानन्द विशेषात्मा तथा श्रीकृष्ण को भी सपरिकर आकृष्ट करने वाली है (यहाँ श्रीकृष्णाकर्षिणी शब्द से कृष्ण के विविध रूपों, अवतारों एवं उनके परिकरों के आकर्षण को भी समझना चाहिए)।

उपरोक्त श्लोक में कुल छः विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। भक्ति की अन्यान्य अगणित विशेषताएं इन्हीं में अन्तर्भुक्त हैं।

इन छः विशेषताओं के विषय में आगे कुछ और वर्णन करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि एकता और अनुकूलता रूपी उत्तमा भक्ति के तीन सोपान हैं—

१- साधन भक्ति,

२- भाव भक्ति और

३- प्रेम भक्ति।

श्लोकोक्त प्रथम दो वैशिष्ट्य (क्लेशघ्नी और शुभदा) साधन भक्ति से सम्बन्धित हैं। प्रथम दो वैशिष्ट्य और तृतीय व चतुर्थ अर्थात् प्रथम चार वैशिष्ट्य (क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत और सुदुर्ल्लभा) भाव भक्ति से सम्बन्धित हैं। और समस्त छः विशेषताएं (क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत, सुदुर्ल्लभा, सान्द्रानन्द विशेषात्मा एवं श्रीकृष्णाकर्षिणी) प्रेमभक्ति से सम्बन्धित हैं।

अब प्रत्येक वैशिष्ट्य का थोड़ा विस्तार से वर्णन करते हैं—

१— क्लेशहारिणी— उत्तमा भक्ति के आचरण से प्रथमतः व्यक्ति के समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं। ये क्लेश तीन प्रकार के होते हैं— 'क्लेशस्तु पापं तद्बीजमविद्या चेति ते त्रिधा' अर्थात् क्लेश— पाप, पाप का बीज और अविद्या ये तीन प्रकार के होते हैं।

पाप हरत्व— श्रुति, स्मृति और सदाचार जिन कार्यों का निषेध करते हैं उन निषिद्ध कार्यों के करने से पाप होता है। जैसे दूसरे प्राणी की हिंसा, चोरी आदि निषिद्ध आचरण हैं, यदि कोई इन्हें करता है तो वह पाप का अर्जन करता है। जैसा कि कहा गया है — 'कर्मफल भोगना पड़ता है', इस नियम के अनुसार पापी व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये पाप कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। पाप कर्मों के फल सर्वथा दुःखदायी होते हैं क्योंकि ये प्रतिकूल आचरण से उत्पन्न होते हैं। प्रतिकूल का फल प्रतिकूल ही होगा।

पाप दो प्रकार के होते हैं— प्रारब्ध एवं अप्रारब्ध। जिसका फल देना शुरु हुआ है, उसको प्रारब्ध कहते हैं। और जिसका फल देना आरम्भ नहीं हुआ है, उसको अप्रारब्ध कहते हैं।

उत्तमा भक्ति के आचरण से भक्त के समस्त अप्रारब्ध पाप नष्ट हो जाते हैं। उन्हें कालान्तर में कर्मफल भोग नियम के अनुसार भोगना नहीं पड़ता है। जैसाकि प्रमाणशिरोमणि श्रीमद्भागवत (११।१४।१९) में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव को कहा है—

यथाऽग्निः सुसमिद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥

"उद्धव! जैसे धधकती हुई आग, लकड़ियों के बड़े ढेर को भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप राशि को पूर्ण रूप से जला डालती है।" यहाँ पाप राशि से संचित अप्रारब्ध पाप का बोध होता है।

अग्नि का विशेषण है— सुसमिद्धार्चिः, उत्तम रूप से प्रज्वलित अग्नि जिस प्रकार लकड़ी को जलाकर राख बना देती है, उस प्रकार धधकती हुई अग्नि के समान थोड़ी सी भी भक्ति पापों का नाश कर देती है। इसका उदाहरण श्रीमद्भागवत के ६।३।२९ में इस प्रकार है—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥

"जिनकी जीभ भगवान् के गुणों और नामों का उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दों का चिन्तन नहीं करता, और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में नहीं झुकता, उन भगवत् से विमुख पापियों को मेरे पास लाया करो।"

उत्तमा भक्ति के आचरण से प्रारब्ध पाप (जिन पापों का फल भोग प्रारम्भ हो चुका है) भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत के (३।६।३३) में लिखित है—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते, कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

"भगवन्! आपके नामों का श्रवण या कीर्त्तन करने से तथा भूले भटके कभी कभी आपका वन्दन या स्मरण करने से कुत्ते का माँस खाने वाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मण के समान पूज्य हो सकता है, फिर आपका दर्शन करने से मनुष्य कृत कृत्य हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।"

श्रीधर स्वामीपाद 'श्वाद' की टीका करते हुए कहते हैं— श्वाद— श्वपच। अर्थात् कुत्ता का माँस

खाना जिसका स्वभाव है, वह व्यक्ति भी भक्ति के प्रभाव से शुद्ध होता है यदि कुत्ता का माँस खाना जारी नहीं रखता हो।

भक्तों का प्रारब्ध नाश होने पर भी सुख दु:ख देखने में आते हैं। वहाँ पर भक्त का जो सुख देखने में आता है, वह भक्ति का आनुषङ्गिक फल है। नारद पञ्चरात्र में कहा गया है—

हरि भक्ति महादेव्या: सर्वाभुक्त्यादि सिद्धय:।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुद्रुता:॥

हरि भक्ति महादेवी के पीछे पीछे दासी की तरह मुक्ति भुक्ति सिद्धि आदि चलती रहती हैं।

भक्त को जो दु:ख होता है,वह भगवद्दत्त हैं। श्रीमद्भागवत के १०।८८।८ में लिखित है—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै:। ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दु:ख दु:खितान्॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—राजन् जिस पर मैं कृपा करता हूँ— उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दु:खाकुल चित्त की परवाह न करके उसे छोड़ देते हैं।

कहीं कहीं पर भक्त के दु:ख का कारण है— वैष्णव अपराध। भक्त के सुख दु:ख के सम्बन्ध में इन सबका विवेचन करना आवश्यक है।

पापबीजहरत्व— इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के ६।२।१७ में कहा गया है—

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानव्रतादिभि:। नाधर्म्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया॥

"तपस्या, दान व्रतादि के अनुष्ठान से सब पाप विनष्ट होते हैं। किन्तु अधर्म अविद्या से उत्पन्न होने के कारण पाप कर्त्ता का हृदय अथवा पाप समूह का मूल-संस्कार सूक्ष्म रूप(पाप बीज) किसी प्रकार से शोधित नहीं होता है। किन्तु श्रीहरि भक्ति से वासना पर्यन्त पापों का क्षय होने से वे सब शुद्ध हो जाते हैं।"

अविद्याहरत्व— विपर्यय अथवा मिथ्या ज्ञान को अविद्या कहते हैं। सत्य में असत्य बुद्धि, असत्य में सत्य बुद्धि, अपवित्र को पवित्र मानना, पवित्र को अपवित्र मानना आदि जो विपरीत बोध होते हैं वे सब अविद्या के उदाहरण हैं। भक्ति से ये समूल नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है—

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या, कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्त:।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-श्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्॥

"सन्त-महात्मा जिनके चरण कमलों के अङ्गुलिदल की छिटकती हुई छटा का स्मरण करके अहङ्काररूप ग्रन्थि को, जो कर्मों से गठित है, इस प्रकार छिन्न भिन्न कर डालते हैं कि समस्त इन्द्रियों का प्रत्याहार करके अपने अन्त:करण को निर्विषय करने वाले सन्यासी भी वैसा नहीं कर पाते। तुम उन सर्वाश्रय भगवान् वासुदेव का भजन करो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति के द्वारा क्लेश समूह हर प्रकार से निर्मूलित हो जाते हैं। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा कि भक्ति के बल पर पाप कर्मों में कभी भी प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। जो लोग यह सोचकर पाप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं कि बाद में भगवन्नामादि से पापों को धो डालेंगे, वे लोग भक्ति के प्रति ही अपराध करते रहते हैं। इस अपराध के फलस्वरूप पापसमूह नष्ट न होकर कई गुना बढ़ जाते हैं और फिर उन सबको भोगना पड़ता है।

यहाँ तक उत्तमा भक्ति के प्रथम वैशिष्ट्य क्लेशघ्नत्व का वर्णन किया गया।

श्रीश्रीगौड़ीय वैष्णव ग्रन्थावली—

श्रीभक्तिसर्वस्वम्

भृगुनाथ मिश्र

(एम.ए.संस्कृत)

श्रीभक्तिसर्वस्व ग्रन्थ वस्तुतः विविध गौड़ीय रचनाओं का एक अनुपम संग्रह है। इसमें अनेकों अष्टक, श्रीनरोत्तम दास ठाकुर विरचित प्रेमभक्ति चन्द्रिका व प्रार्थना, श्रीगोविन्ददास कृत पद, श्रीयदुनाथ दास विरचित श्रीमत् गदाधर पण्डित गोस्वामि शाखा निर्णयामृतम्, श्रीगदाधर पण्डित की लीला-माधुर्य-सौन्दर्य का संग्रह है। प्रभुपाद श्रील विनोद विहारी गोस्वामी वेदान्त रत्न महोदयकृत श्रीराधामाधव स्तव, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी रचित मनःशिक्षा, स्वनियम दशकम्, उत्कण्ठादशकम्, श्रीरूपगोस्वामीकृत उपदेशामृतम्, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित श्रीश्रीअनुरागवल्ली इत्यादि इस ग्रन्थ में संकलित हैं।

इस ग्रन्थ में संकलित रचनाएं विशेषरूप से श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के अन्तरङ्ग पार्षद **श्रीमत् गदाधर पण्डित गोस्वामी** से सम्बन्धित हैं। पण्डित गोस्वामि का उत्तमा भक्ति और महाप्रभु के पार्षदों में क्या स्थान है, इसका पता इसमें संकलित अष्टकों से चलता है। महाप्रभु के समकालीन एवं बाद के प्रायः सभी आचार्यों ने उनसे सम्बन्धित रचनाओं में सर्वत्र सूचित किया है कि यदि किसी को उत्तमा भक्ति (ब्रज भक्ति) प्राप्त करने की अभिलाषा है तो उसे अनिवार्य रूप से श्रीगुरु के आनुगत्य में पण्डित गोस्वामी का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। श्रीकृष्ण चैतन्य लीला में श्रीराधिका ही लोगों को ब्रजभक्ति की शिक्षा देने के लिए श्रीमत् गदाधर पण्डित गोस्वामी के रूप में अवतरित हैं। श्रीलरूपगोस्वामीजी **श्रीलराधागदाधर दशकम्** (१-२) में लिखते हैं—

वृन्दावनेश्वरी राधा प्रेमभक्ति प्रदायिनी।
कलौ श्रीगौरदयितः श्रीगदाधर पण्डितः॥
सर्व पाण्डित्य साराख्यं प्रेमरत्न विभूषणम्।
माधवात्मजवन्द्याग्रं वन्दे राधा-गदाधरम्॥

अर्थात् "वृन्दावन अधीश्वरी श्रीराधा प्रेमभक्ति प्रदान करने वाली हैं। कलियुग में वह श्रीगौरप्रिय श्रीगदाधर पण्डित हैं। समस्त पाण्डित्य का सार इनमें ख्यात है। प्रेमरत्न ही इन श्रील गदाधर पण्डित का आभूषण है। श्रीमाधवनन्दन(श्रीगदाधर पण्डित) आराध्यों के भी आराध्य हैं। मैं श्रीराधागदाधरजी की वन्दना करता हूँ।"

भक्ति सर्वस्व में श्रीलगदाधर पण्डित गोस्वामीजी से सम्बन्धित निम्नलिखित रचनाएं संकलित हैं—

१. श्रीयदुनाथदास विरचित श्रीमत् गदाधर पण्डित गोस्वामि शाखा निर्णयामृतम्।

२. श्रीश्रीमत् गदाधर पण्डित गोस्वामिनां रतिजनक द्वादश नामानि।

३. श्रीसार्वभौमकृत श्रीश्रीगदाधर पण्डित गोस्वाम्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्।

४. श्रीअच्युतानन्द प्रभु विरचित श्रीश्रीगौरगदाधरयुगलाष्टकम्।
५. श्रीसनातनगोस्वामिपाद विरचित श्रीराधागदाधराष्टकम्।
६. श्रीरूपगोस्वामि विरचित श्रीराधागदाधर दशकम्।
७. श्रील स्वरूप गोस्वामि विरचित श्रीराधागदाधराष्टकम्।
८. श्रीनयनानन्दमिश्र विरचित श्रीगौरगदाधर युगलाष्टकम्।
९. श्रीलोकनाथ गोस्वामि विरचित श्रीराधागदाधराष्टकम्।
१०. श्रीशिवानन्दचक्रवर्त्ति विरचित श्रीगदाधराष्टकम्।
११. श्रीभूगर्भ गोस्वामि विरचित श्रीगदाधराष्टकम्।
१२. श्रीपरमानन्द गोस्वामी कृत श्रीश्रीराधागदाधराष्टकम्।
१३. श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ति रचित श्रीगौराङ्ग लीलामृत धृत श्रीलोचनदास कृत तीन पद (बंगला पयार)
१४. श्रीनरहरि सरकार कृत श्रीगदाधर प्रभु का आविर्भाव लीला।
१५. श्रीगदाधर प्रभु का संक्षिप्त लीला वर्णन।
१६. श्रीगदाधर प्रभु के अङ्ग का सौन्दर्य और माधुर्य वर्णन।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने पण्डित गोस्वामी को स्वसम्प्रदाय के प्रसार का कार्य भार सौंपा था। दीक्षा, विग्रह सेवा और श्रीमद्भागवत का अध्यापन कार्य इन्हीं के अधीन था। श्रीमन्महाप्रभु इनसे सदैव श्रीमद्भागवतम् का श्रवण करते थे। इनके शिष्य प्रशिष्य की सूचना भक्तिसर्वस्व में ही संकलित **श्रीश्रीमद् गदाधर पण्डित शाखानिर्णयामृतम्** से मिलती है।

श्रीभक्तिसर्वस्व में परम वैष्णव श्रील नरोत्तमदास ठाकुर विरचित **प्रेमभक्तिचन्द्रिका** एवं **प्रार्थना** भी संकलित हैं। प्रेमभक्तिचन्द्रिका में भक्ति के विशुद्ध सिद्धान्तों का वर्णन सरल बंगला भाषा में बड़े ही कुशलता के साथ हुआ है। हिन्दी भाषी लोग भी इसे आसानी से समझ सकते हैं। पाठक इसके श्रवण से उत्तमा भक्ति के मूलभूत सिद्धान्तों को शीघ्र ही समझ सकता है। इसका उदाहरण नीचे प्रस्तुत है—

श्रीगुरुचरण पद्म, केवल भकति सद्म, वन्दो मुञि सावधान मने ।
जाँहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाई, कृष्णप्राप्ति हय जाहा हने ॥
गुरु मुखपद्म वाक्य, हृदये करिया ऐक्य, आर न करिह मने आशा ।
श्रीगुरुचरणे रति, एइ से उत्तम गति, जे प्रसादे पुरे सर्व आशा ॥

प्रार्थना में कुल ५६ पद हैं। इन पदों के द्वारा श्रीगुरु, गौराङ्ग महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, पण्डित गोस्वामी, श्रीराधाकृष्ण, श्रीवास पण्डित, रूप-सनातन एवं अन्यान्य गौर परिकरों के प्रति उत्तमा भक्ति की प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है। इनमें वृन्दावन धाम, गोवर्द्धन आदि विविध भगवद्पदार्थों, वैष्णवों आदि के प्रति विविध भावपूर्ण प्रार्थनाएं भी हैं। पद संख्या १७ का कुछ अंश प्रस्तुत है—

ठाकुर वैष्णव पद, अवनीर सम्पद, शुन भाई हञा एक मने ।
आश्रय लइया सेवे, सेइ कृष्ण भक्ति लभे, आर सब मरे अकारणे ॥

प्रभुपाद श्रील विनोद विहारी गोस्वामी वेदान्त रत्न महोदयकृत **श्रीराधामाधव स्तव** का कुछ अंश—

जय कृष्ण कृपामय कल्पतरो, गुण गौरव विश्रुत विश्वगुरो।
मयि देहि दृशं भव दुःख सहे, जय यादव माधव केशव हे॥

मन का भक्ति में विशिष्ट स्थान है। भक्ति की उपलब्धि के लिए मन का बाह्य विषयों से हटकर भगवत्सम्बन्धी विषयों में लगना अति आवश्यक है। श्रीलरघुनाथदास गोस्वामीपाद ने मन को शिक्षित करने के लिए **मनःशिक्षा** नाम से कतिपय श्लोकों की रचना की है। वे श्लोक भी इस भक्ति सर्वस्व में संग्रहीत हैं। प्रथम श्लोक निम्न है—

गुरौ गोष्ठे गोष्ठालयिषु सुजने भूसुरगणे,
स्वमन्त्रे श्रीनाम्नि व्रजनवयुवद्वन्द शरणे।
सदा दम्भं हित्वा कुरुरतिमपूर्व्वामतितरा-
मयेस्वान्तभ्रान्तश्चटुभिरभियाचे धृतपदः॥

"हे मन! मैं तुम्हारे चरणों में विनम्र प्रार्थना कर रहा हूँ कि— तुम सर्वथा दम्भ को छोड़कर श्रीगुरुदेव, गोष्ठ, श्रीव्रजधाम, व्रजवासिवृन्द, सज्जनवृन्द, वैष्णव, ब्राह्मणवृन्द, निजमन्त्र, श्रीहरिनाम एवं व्रज के नवकिशोर युगल श्रीराधाकृष्ण के पास आत्मसमर्पण करके उन सबके प्रति अनुराग करो।"

इसी प्रकार संकलित **श्रीउपदेशामृतम्**, **उत्कण्ठादशकम्** एवं **अनुरागवल्ली** आदि भक्त के भक्ति को सतत बढ़ाने वाले हैं।

भक्ति के विविध सोपानों में एक सोपान है— अनुराग। इस अवस्था में भक्त की मनो स्थिति क्या होती है, श्रीअनुरागवल्ली स्तव में इसका परिचय मिलता है। श्रीअनुरागवल्ली का एक श्लोक यहाँ प्रस्तुत है—

तत्पार्श्वगत्यै पदकोटिरस्तु सेवां विधातुं मम हस्त कोटिः।
तां शिक्षितुंस्तादपि बुद्धि कोटिरेतान् वरान्मे भगवन्! प्रयच्छ॥८॥

अर्थात् "हे भगवन्! मुझको यह वर प्रदान करिये कि आपके समीप गमन करने के निमित्त मेरे कोटि पैर हों, आपकी सेवा के निमित्त करोडों हाथ हों एवं **उस सेवाकार्य के सुष्ठुरूप से सम्पादन के निमित्त शिक्षा प्रदान करने के लिए मेरी कोटि बुद्धियाँ हों।**"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस संकलन का भक्तिसर्वस्व नाम सार्थक है। भक्तों को अपनी श्रद्धा एवं भक्ति के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु इसका नित्य प्रति श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिए।

श्रीगुर्व्वाष्टकम्

(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित श्रीस्तवामृत लहरी से उद्धृत)

भक्तों के लिए नित्य पठनीय एवं मननीय श्रीगुरुदेवस्तुति

संसारदावानललीढलोक, त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥१॥
महाप्रभोः कीर्त्तननृत्यगीत, वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन।
रोमाञ्चकम्पाश्रुतरङ्गभाजो, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥२॥
श्रीविग्रहाराधननित्यनाना, श्रृङ्गारतन्मन्दिरमार्जनादौ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥३॥
चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसाद, स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥४॥
श्रीराधिकामाधवयोरपार, माधुर्यलीलागुणरूपनाम्नाम्।
प्रतिक्षणाऽस्वादनलोलुपस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥५॥
निकुञ्जयूनोरतिकेलिसिद्ध्यै, या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥६॥
साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै,-रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥७॥
यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो, यस्याऽप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥८॥
श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चै, -र्ब्राह्मे मुहूर्त्ते पठति प्रयत्नात्।
यस्तेन वृन्दावननाथसाक्षात्, सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव॥९॥

अनुवाद— संसाररूप दावानल से सन्तप्त लोक की रक्षा करने के लिए, दया के भाव से वर्षा करने वाले मेघ के भाव को प्राप्त होने वाले एवं कल्याणगुण के सागर स्वरूप श्रीगुरुदेव के श्रीचरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ॥१॥

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव के कीर्त्तन, नृत्य, गीत एवं वाद्य से प्रेमोन्मत्त मानसरस से उत्पन्न होने वाले रोमाञ्च, कम्प, अश्रु के तरङ्गों का सेवन करने वाले श्रीगुरुदेव के श्रीचरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

इष्टदेव श्रीराधागोविन्ददेवजी के श्रीविग्रह की आराधना, नित्य नाना प्रकार का शृङ्गार, उनके मन्दिर की साफ-सफाई आदि नित्य नाना प्रकार की सेवा में स्वयं लगे रहने वाले; तथा भक्तों को भी भगवत् सेवाओं में नियुक्त करने वाले श्रीगुरुदेव के श्रीचरणकमल की मैं वन्दना करता हूँ॥३॥

हरिभक्तों को चारो प्रकार (चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय) के श्रीभगवत्प्रसाद सुस्वादु अन्न के द्वारा सदैव परितृप्त करके स्वयं तृप्त होने वाले श्रीगुरुदेव के श्रीचरणसरोज की मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

श्रीराधामाधव के अपार माधुर्य-लीला-गुण-रूप-नाम का प्रतिक्षण आस्वादन करने के लिए लालायित रहने वाले श्रीगुरुदेव के श्रीचरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ॥५॥

श्रीराधाकृष्ण के क्रीड़ा की सिद्धि के लिए आलिवृन्द के द्वारा जिन जिन युक्तियों की अपेक्षा है उन उन युक्तियों में अतिशय दक्ष होने के कारण उनके अतिशय प्रिय श्रीगुरुदेव के श्रीचरणकमल की मैं वन्दना करता हूँ॥६॥

समस्त शास्त्रों में श्रीगुरुदेव को साक्षात् श्रीहरि का स्वरूप कहा गया है तथा सज्जनों के द्वारा उसी प्रकार भावना भी किया जाता है; किन्तु प्रभु के जो अतिशय प्रिय हैं मैं उन्हीं श्रीगुरुदेव के श्रीचरणारविन्द की वन्दना करता हूँ॥७॥

जिनके प्रसाद से भगवान् का प्रसाद प्राप्त होता है एवं जिनकी अप्रसन्नता से कहीं भी गति नहीं होती है उन श्रीगुरुदेव के यश का तीनों सन्ध्याओं में ध्यान एवं स्तुति करता हुआ मैं उनके श्रीचरणकमल की वन्दना करता हूँ॥८॥

जो व्यक्ति ब्रह्ममुहूर्त्त में इस श्रीगुर्व्वाष्टक को प्रयत्नपूर्व्वक ऊँचे स्वर से पढ़ता है, वह व्यक्ति अपने देहावसान के बाद श्रीवृन्दाविननाथ भगवान् श्रीकृष्ण की साक्षात् सेवा को प्राप्त करता है॥९॥

गावो विश्वस्य मातरः

(गाय विश्व की माता है।)

जगन्नाथ दास

(बी.टेक., आई.आई.टी. कानपुर)

इस ब्रह्माण्ड के अनन्त जीवात्मा अनादि काल से भिन्न भिन्न प्रकार के कर्म फल में आबद्ध हैं। सभी जीवात्माओं का हित चाहने वाले भगवान ने उनकी वासनाओं की पूर्ति के लिए तत्पर होकर इस ब्रह्माण्ड का सृजन किया है। इस ब्रह्माण्ड में चौरासी लाख प्रकार के शरीरों का सृजन करके उन्होंने जीवात्माओं का निवास स्थान तैयार किया है। इस सृष्टि का देखभाल करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए उन्होंने मानव शरीर का निर्माण किया। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो ईश्वर की इच्छा के अनुसार उनकी इस सृष्टि का देखभाल कर सकता है। ईश्वर का हो करके सम्पूर्ण सृष्टि के संरक्षण व संवर्द्धन करने के इस कार्य को कहते हैं— धर्म। जिस प्रकार मां अपने सन्तान के संरक्षण व संवर्द्धन की ओर ध्यान देती है, उसी प्रकार यदि हर मनुष्य इस सष्टि की रक्षा व संवर्द्धन करे, तो इस जगत का प्रत्येक प्राणी सुखी होगा। मां के समान सबका देखभाल करने की वृत्ति वाले लोग ईश्वर को अत्यन्त प्रिय हैं।

मां जैसा देखभाल करने की यह वृत्ति मनुष्य के हृदय में कैसे आएगी? इसके लिए ईश्वर ने एक आदर्श प्राणी का सृजन किया है। वह प्राणी है— गो। उसकी सेवा करने से मनुष्य के हृदय में ईश्वर ऐसी भावनाओं का संचार कर देते हैं जिनकी आवश्यकता होती है सृष्टि के देखभाल करने के लिए। मां जैसा देखभाल करने की क्षमता मनुष्य में उदित होती है गो-सेवा के माध्यम से। गो स्वयं उपकारी व निरपराधी भावों का आदर्श है। गो-सेवा करने वाले लोगों के हृदय में भी निरपराधिता व उपकारिता के भाव उदित हो जाते हैं। इन्हीं भावों के माध्यम से व्यक्ति ईश्वर सृष्ट पदार्थों के संरक्षण व संवर्द्धन का कार्य करता है — ठीक मां जैसा। इसलिए शास्त्र में गो को सम्पूर्ण विश्व की माता घोषित किया गया है। इस बात की पुष्टि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने व्रज की गोमाता के स्तन से दुग्धपान करके किया है। विश्व के सृजनकर्त्ता ने दुग्धपानकर गो को विश्व की माता का स्थान दिया। इसलिए कहते हैं,— "गावो विश्वस्य मातरः" अर्थात् गाय विश्व की माता है।

Samadhi

Snehansu Mandal

(Ph.D., IIT Kanpur)

Samadhi is a state of non-material experience (*aparoksha anubhuti*) of the non-material world. In the state of *Samadhi*, one directly experiences the non-material world without any intervening instrumental medium, the internal as well as the external sense organs. *Samadhi* is a state of being or existence (*Sat*). *Samadhi* is not an imaginary model. It has knowledge (*Cit*) and bliss (*Ananda*) as its very character and essence. *Samadhi* is 'seeing the truth' (*tattva-vastu darshan*). *Samadhi* is dynamic, full of action, though the action is neither physical nor mental. *Samadhi* is in no way connected to physical and mental inaction. *Samadhi* is a state of active participation with the non-material reality which is free from all the defects (*Bhrama, Pramada, Vipralipsha & Karanapatava*) and limitations of the finite material world. Liberation is always included in *Samadhi* just as a smaller pond is always included in a bigger pond. Liberation is automatically achieved in *Samadhi* just as bathing in a bigger pond automatically ensures the bathing in a smaller pond. Separate effort for liberation is not required. *Samadhi* ensures liberation. Liberation is an internal characteristic feature of *Samadhi*. *Samadhi* features *tyag* (renunciation of materialism), *samarpan* (conscious surrender to non-material principles) and *seva* (non-material activity leading to non-material bliss and ecstasy) at various levels. The non-material language, the source and sustenance for all the material languages, is also present in *Samadhi*. *Samadhi* is full of variety depending on the '*Bhava*' (mood) of the person involved, but *Samadhi* is devoid of all kinds of differences (*svagata bheda, sajatiya bheda and vijatiya bheda*). *Samadhi* is total oneness in the sense of total one-heartedness (*ekatmiyata*). It is free from all kinds of contradictions (*bheda*). *Samadhi* can not be fully described in the language of this material world, because it is not finite. It is not relative. It is beyond material space and material time, and therefore, it is also beyond material language. This is only an attempt for description. This attempt is only a beginning.

The internal symptom (*Svarupa lakshana*) of *Samadhi* is one-heartedness (*anukulata*, *ekata*, *ekatmiyata*) with the non-material principle (*niskapatata, bhagavad-unmukhata*). And the external symptom (*tatastha lakshan*) is that *Samadhi* is free from the material principle which is *kapatata*, *bhagavad-vimukhata*. In *Samadhi*, materialism is automatically left out just as shadow automatically vanishes when the sun rises. No separate effort for removing materialism is necessary. It takes place automatically, when *Samadhi* dawns. Materialism has no place in *Samadhi*. They do not go together just as shadow and light can not stay together. In the state of *Samadhi*, all kinds of material sufferings and disturbances along with their sources vanish. The beginning-less material condition comes to a permanent end at *Samadhi*. For a seeker of truth in this material world, *Samadhi* has a

beginning, but it never ends. The passage of time ceases to exist in *Samadhi*. *Samadhi* is flawless. In *Samadhi*, matter (*jada padartha*) is absent. It is all non-matter (*chetan padartha*).

Samadhi involves non-material action that takes place at different levels of the non-material platform depending upon the relationship of an individual with the non-material reality. These levels depend on the degree of one-heartedness of the seeker with the non-material reality. Non-material reality has both opulence (*aishvarya*) as well as sweetness (*madhurya*) as its internal feature (*svarupa*). Manifestation of the different degrees of one-heartedness (*ekatmiyata*) depends on the relative dominance (not in a material sense) of the opulent or the sweet feature of non-material reality, with which the seeker may interact. When the seeker interacts with the more opulent feature of the non-material reality, the sweet (*madhura*) feature takes a back seat and plays the secondary role, and in such condition, the state of *samadhi* is lighter, less personal in mood, and the relationship in terms of one-heartedness is less developed. The state of *Samadhi* deepens as one becomes more and more united in terms of oneness, one-heartedness with the non-material reality by interacting with its sweet (*madhura*) feature, which is more personal in mood. At this level sweetness (*madhurya*) plays the primary role, while opulence takes a back seat. In such interactions, as one's attachment for the non-material reality becomes more and more intensified, state of *Samadhi* becomes more and more deep, condensed, relishable, blissful, sweet, and the relationship in terms of one-heartedness becomes more and more developed. Both opulence and sweetness are non-contradictory and friendly to each other and, therefore, they corroborate and help each other in their respective activities.

These different levels, states of *Samadhi* are not comparable to each other, because they are not different, contradictory realities. They are all part of one, non-different reality (*abheda*) only, devoid of any duality (*bheda*), which manifests at different levels as per the qualification of the seeker. One level is not higher or lower than the other levels. One level does not compete with other levels. At the non-material platform, since it is full and complete, it is perfect and the question of duality like good-bad, higher-lower etc. does not apply. They are all non-different (*abheda, advaya*, one in non-material principle) reality. They are varieties only, devoid of any sort of contradiction (*bheda*). They are non-contradictory manifestation of one and the same reality. In the state of *Samadhi*, the non-material reality directly dawns in front of the seeker, as per the desire and qualification of the seeker, at different levels as mentioned above.